International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979
Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 11; November 2017; Page No. 207-212

अमोल बटरोही : जीवन वृत्त एवं व्यक्तिव

अर्चना द्विवेदी
हिन्दी विभाग, शासकीय शहीद केदारनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मऊगंज, रीवा, मध्य प्रदेश, भारत।

सारांश
प्रस्तुत शोध पत्र अमोल बटरोही का जीवन वृत्त एवं व्यक्तिव का अध्ययन पर आधारित है। परिवार के उद्‌गम के लिये गत्यात्मक परिस्थितियों के संदर्भ में डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त की स्वीकृति हुई। इसके अनुसार मनुष्य में वातावरण की शक्ति के सन्तुलन में अपने प्रभुत्व के द्वारा अस्तित्व की प्रतिष्ठा का भाव सदैव विद्यमान रहा है। इसी भाव ने सभ्यता के विकास के साथ–साथ 'एक दूसरे के प्रति सहयोग तथा सहिष्णुता' की प्रवृत्ति की शक्ति प्रदान की और फलतः एक संगठन का आधार निर्मित हुआ है। बटरोही जी का जन्म एक ऐसे गाँव में और परिवार में हुआ, जहाँ पुरानी रूढ़िया, परम्परायें और अंध विश्वासों के मेले लगे रहते हैं। इनके परिवार की परम्परा पूजा पाठ एवं भजन कीर्तन तक ही सीमित न होकर गाँव की पंचायत एवं लेन–देन के लेखा–जोखा तक पहुँचती थी। जमीन का बंटवारा भी इनके पिता और पितामह किया करते थे। इसलिए बटरोही जी के जीवन में इस तमाम पारिवारिक विशेषताओं का पूर्ण प्रभाव पड़ा। और इसी प्रभाव के कारण उनके काव्य में उन सभी बिन्दुओं का जीता जागता प्रमाण मिलता है। अंधविश्वास और ढोंग ने तो कवि के मानस को उद्वेलित कर दिया है। किसी भी महान रचनाकार के व्यक्तित्व की समीक्षा उसके समस्त कृतित्व एवं नित्य प्रति की सृजनशीलता के आधार पर ही की जा सकती है।

मूल शब्द : अमोल बटरोही, भारतीय सांस्कृतिक, जीवन वृत्त एवं व्यक्तिव, सहिष्णुता

प्रस्तावना
अमोल बटरोही का जन्म 5 जून 1943 ई. को साम वेदाध्यायी वत्स गोत्रीय सरयू पारीण ब्राह्मण कुल में हुआ था। रीवा जिले की हुजूर तहसील में दुअरा (शिवबालक राम) एक विशाल ग्राम है जहाँ अधिकांशतः दोगारी मिश्र ही निवास करते हैं। इन्हीं मिश्रों में से पं. भगवानदीन के परिवार में बटरोही जी का जन्म हुआ जो इनके बाबा थे। इनके पिता जी का नाम स्व. श्री शिवबालक राम था, जो गाँव के मुखिया थे, उनका गाँव में काफी सम्मान था, क्योंकि वे गाँव के आचार्य भी थे। इनकी माता का नाम श्रीमती मनकुमारी देवी था। जिनका प्रभाव अमोल पुत्र पर पड़ा था, वे सम्प्रति स्वर्गीय हो चुकी हैं। इनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती किरण मिश्रा है; जो एक सद्‌गृहिणी की भांति गृहस्थी और परिवार के संरक्षा का दायित्व निर्वहन कर रही हैं।

बटरोही जी का पारिवारिक वातावरण ग्रामीण परिवेश से जुड़ा हुआ है। इनका जीवन संस्कार भारतीय सांस्कृतिक वैभव का अनूठा स्वरूप रहा है। मुखिया जी के मार्गदर्शन में बालक अमोल का पालन पोषण हुआ। इनकी मातुश्री एक भारतीय सुसंस्कृति गृहणी तथा एक आदर्शमयी सद्‌गुणी महिला थी। उनका कहना था कि मेरा बालक अमोल अल्पायु में ही चलने और बोलने लगा था। इन्हीं गुणों के आधार पर हम लोगों ने उनका नाम 'अमोल' रखा, सचमुच प्रतिभावान बालक अमोल का कोई मोल नहीं था। गृह शिक्षा की दृष्टि से जो देखते थे या जो लोगों को कर्मरत् रूप में पाते थे उन सद्‌गुणों को मेरा अमोल सहज ही ग्रहण कर लेता था। उसे देखकर ऐसा लगा कि देवतालाब के बाबा भोलेनाथ की मेरे बच्चे पर बड़ी कृपा और अनुग्रह है।

माता के प्यार तथा पिता के दुलार से पोषित बालक अमोल पर पूर्वजों के अनुग्रह की छाया सहज ही दृष्टिगोचर होने लगी थी। बटरोही जी का जन्म एक ऐसे ग्रामीणांचल के परिवार में हुआ जहाँ प्राचीन रूढ़ियाँ, परम्परागत आचरण और अन्धविश्वासों मे मेले लगे रहते हैं। उनके परिवार की परम्परा में पूजा पाठ, भजन कीर्तन तो होता ही था, इनके पूर्वज और माता पिता की परम्परा गाँव की पंचायत लेनदेन का निपटारा आदि भी किया करते थे। यही कारण है कि बटरोही के जन्म के पश्चात् उनके पारिवारिक वातावरण का प्रभाव अमोल मिश्र बटरोही जी के जीवन पर पड़ा और इसी प्रभाव के कारण किसानों के प्रति प्रेम, गरीब मजदूरों से घनिष्ठता और गुरुजनों के प्रति असीम निष्ठा का भाव उन पर देखा जा सकता है। एक बार वे अपने गाँव के सम्भ्रान्त जनों के साथ बाजार से आपने गाँव जा रहे थे, रास्ते में एक बसोर (घईकार) श्री सत्यनारायण कथा का श्रवण कर रहा था, जब अमोल वहाँ पहुंचे तब कथा समाप्त हो चुकी थी, प्रसाद वितरण हो रहा था, भक्ति भावुक अमोल प्रसाद लेने के लिए कथा स्थल पर पहुंच गया। उसके साथ के लोग रोक रहे थे, लेकिन वह बालक भगवान से विमुख कैसे हो सकता था? वह अकेले स्वभावगत और परम्परागत प्रेरणाओं से सम्पृक्त होने के नाते चूर्ण और रोट ग्रहण किया और प्रेम से प्रसाद परिवारजनों को देने के लिए घर ले गया और बड़े भाव से भगवत् प्रसाद, विष्णु भगवान का प्रसाद सभी को वितरण किया।

रात्रि होने पर मुखिया जी के घर (पं. शिवबालक) उसके साथ रहने वाले लोगों ने मुखिया जी से 'बसोर' के घर का प्रसाद लेने की बात कही। पंचायत बैठा। बालक अमोल को पंचायत में बुलाया गया। उस समय उनकी आयु लगभग 10 वर्ष की रही होगी। उनसे पूँछा गया कि क्या तुमने बसोर का रोट खाया था, बच्चे ने आह्लादित होकर उत्तर दिया – हाँ, सत्य नारायण भगवान का प्रसाद खाया था। पंचायत ने पूँछा वह 'बसोर' जाति के हाथ का बनाया प्रसाद था, उसका बनाया हुआ अन्न क्यों ग्रहण किया?

बालक अमोल ने उत्तर दिया – वह भगवत् प्रसाद था 'बसोर' का नहीं। वह आगे कहता गया आप ही लोगों ने यह बताया था कि भगवान का प्रसाद नहीं छोड़ना चाहिए। मैंने वही किया, जो पूर्वजों ने शिक्षा दी थी। होनहार बालक 'अमोल' के उत्तर से पूरी पंचायत सभी अवाक् रह गयी। इसी को पारिवारिक वातावरण का अनूठा

प्रभाव बताया गया है।
कुल मिलाकर मैं यह कह सकती हूँ कि 'अमोल बटरोही' का जन्म असाधारण और अप्रतिम रहा है। उन पर पड़ने वाला पारिवारिक वातावरण रमणीक, रसमयी, सुखबोध्य और पवित्र कहा जा सकता है। कर्मकाण्ड का प्रभाव अमोल के परिवार का आधार रहा है।
ऐसे परिवार के जीवन में महत्वपूर्ण विशेषताओं को चरण–चरण पर देखा जा सकता है। इनमें पहले स्वत्व की धारणा पर विशेष और बेजोड़ प्रवृत्ति का उल्लेख मिलता है। इनमें परलोक की धारणा का भी महत्वपूर्ण श्रेय रहा है, यही कारण है कि 'अमोल' पर भारतीय संस्कृति के प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ा, जिनसे उनके परिवार का ढाँचा भारतीयता से ओत–प्रोत था।
इस प्रकार नगरीय जीवन का प्रभाव समष्टिवादी प्रवृत्तियों का प्राबल्य पारिवारिक सम्बन्धों और लक्ष्यों में बालक निष्ठा आदि बाल स्वभाव का महत्वपूर्ण योग देखा जा सकता है।
आधुनिक परिवार का प्रत्येक सदस्य, चाहे वह छोटा हो अथवा बड़ा, के द्वारा दायित्व का निर्वाह पूरा होता देखना चाहता है अन्यथा प्रजातन्त्र के युग में समानता और स्वतन्त्रता पर आधारित परिवार किस प्रकार अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में सफल हो सकेंगें? इसके लिये प्रत्येक सदस्य का अपने सम्बन्ध के अनुसार अपनी जिम्मेदारी को पूरा करना आवश्यक है।
इन्हीं मानक गुणों का अमोल बटरोही के जीवन वृत्त एवं व्यक्तित्व पर स्पष्ट आलोक देखा जा सकता है।

शिक्षा सेवायें एवं जीवन व्यापार

बटरोही जी शैशव काल से ही बड़ी कुशाग्र बुद्धि के बालक थे। इनके माँ का कहना है कि ये अल्पायु में ही चलने और बोलने लगे थे। इनके प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के प्राथमिक पाठशाला से प्रारंभ हुई जहाँ इन्होंने कक्षा 5 प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। कक्षा 8 तक की शिक्षा आपने जूनियर हाई स्कूल रघुनाथगंज से प्राप्त किया जो अब उ.मा. विद्यालय के रूप में परिवर्तित हो चुका है। उ.मा. शिक्षा आपने हा.से. स्कूल मऊगंज से प्राप्त किया और उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये आप 1962 में ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा में बी.ए. प्रथम भाग में प्रवेश लिया और 1964 में आपने प्रथम श्रेणी में स्नातक डिग्री प्राप्त किया। 1966 में आपने वहीं से अंग्रेजी में एम.ए. पास किया। 1968 में आपने संस्कृत में पुनः स्वाध्यायी छात्र के रूप में एम.ए. पास किया। 1964 में आपने रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर से बी.एड. प्रशिक्षण प्राप्त किया। शिक्षा के प्रति उनके मन में इतना मोह है कि ये सब कुछ त्याग कर उसे प्राप्त करना चाहते हैं। इसलिये जब वे अध्यापन पेशे में आ गये तब भी स्वाध्यायी परीक्षार्थी के रूप में विभिन्न परीक्षाओं में बैठते रहे और अपनी अभिरुचि तथा अध्ययनशीलता के कारण आशातीत सफलता प्राप्त करते रहे।
श्री बटरोही जी का कार्यक्षेत्र पूर्ण रूप से शिक्षा जगत ही रहा है। जिस माटी में उन्होंने जन्म लिया, पले पोशे और बड़े हुये उसी में वे अपनी पूर्ण समर्पित भावना से कार्यरत हो गये। शिक्षा समाप्ति के तुरन्त बाद आज 13 जुलाई 1966 को शहीद केदारनाथ महाविद्यालय, मऊगंज के प्राचार्य पद पर नियुक्त हुए। यहाँ से आपकी शैक्षणिक सेवा प्रारंभ होती है। किन्तु यह महाविद्यालय उन दिनों अशासकीय था इसलिये अवसर पाकर श्री बटरोही जी 10 अक्टूबर 1966 में टी.आर.एस. कालेज, रीवा में प्राध्यापक अंग्रेजी विभाग में पदस्थ हुए, परन्तु उनकी यह नियुक्ति अंशकालिक थी। इसलिये वे निरन्तर स्थायी सेवा के लिये प्रयत्नशील रहे। और इसके बाद में उ.मा. विद्यालय में अंग्रेजी व्याख्याता के रूप में स्थायी रूप से नियुक्त होकर मध्यप्रदेश के विभिन्न उ.मा. विद्यालयों में कार्य करते रहें और अन्त में उ.मा. विद्यालयों में प्राचार्य पद पर कार्यरत रहे।
अपने सेवाकाल में बटरोही जी को म.प्र. के विभिन्न उ.मा. विद्यालयों में शैक्षणिक सेवा में अवसर मिला है। इसलिये उनके काव्य में विभिन्न स्थानों की संस्कृति परम्परायें, मान्यताएं आदि देखने को मिलती हैं। चूंकि शासकीय सेवा में स्थानान्तरण होते रहते हैं, इसलिये एक स्थान से दूसरे स्थान में जाकर कार्य करने के साथ ही संवेदनशील बटरोही जी विभिन्न स्थानों की अपनी अनुभूतियों को अपने काव्य में बहुत ही बारीकी से पिरोये हैं। साथ ही यात्राओं के दौरान उनकी मानसिकता में राहगीर का अनुभव भी परिलक्षित होता है। उनके कार्यक्षेत्र में रीवा, शहडोल, बस्तर और रायपुर उल्लेखनीय है। अपने सेवाकाल में जहाँ–जहाँ वे रहे उस स्थान को अपना माना और उसकी माटी से प्यार किया और अपनी संवेदनशीलता से उसे सवारने का प्रयास किया।
किसी कवि का व्यक्तित्व मूल रूपसे उसके काव्यों के माध्यम से ही होता है। साथ ही उसके ऊपर तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव भी उसके व्यक्तित्व पर पड़ता है और उन्हीं सम–सामयिक परिस्थितियों के आधार पर ही कवि का व्यक्तित्व निर्मित होता है। किन्तु इसके पूर्व उसकी पारिवारिक स्थिति परिस्थिति का भी प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर पड़ता है और उन्हीं सम–सामयिक परिस्थितियों के आधार पर ही कवि का व्यक्तित्व निर्मित होता है। किन्तु इसके पूर्व उसकी पारिवारिक स्थिति परिस्थिति भी उसके व्यक्तित्व निर्माण की बुनियाद होती है।
17 सितम्बर 03 से 30 जून 2005 तक 'अमोल प्रसाद' जिला शिक्षा अधिकारी के रूप में कार्य करते हुए इसी पद से वर्तमान में सेवानिवृत्त है।

पूर्वज एवं वंश परम्परा

मानव जीवन में परिवार, समाज, राष्ट्र का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। माता, पिता का प्रभाव बालक पर स्वभावतः सृष्टिजन्य प्रक्रिया में देखा जा सकता है। व्यक्ति के जीवन में उसके पूर्वजों एवं वंश परम्परा के संस्कार की स्पष्ट झलक प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ती है। आर्यावर्त की श्रेष्ठ परम्परा का प्रभाव–उद्रेक अर्थों के आचरण से समन्वित रहा है। ऐसे श्रेष्ठ वंश परम्परा में जन्म लेने वाला बालक अपने जीवन में बाल्यावस्था से ही अपने माता, पिता, या परिवार का संस्कार ग्रहण करते हुए आगे चलकर अपने सत्कर्मों और उत्कृष्ट विचारों से अपने कुल की परम्परा में चारुचाँद लगा देता है।
इसी अवसर पर परिवार को शाश्वत प्रकृति प्रदान करने वाली व्यापक भावभूमि की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। विलक्षण बात तो यह है कि परिवार की सीमाएँ और क्षेत्र–भेद मनुष्य के दृष्टिकोण पर ही निर्भर करते हैं। उसका आकार उतना ही सीमित अथवा विस्तृत हो सकता है जितने से उसके विभिन्न सदस्य अपना सम्बन्ध–भाव बनाये रखने में सफल हो सकते हैं। यही कारण है कि सभ्यता के इतिहास में परिवार जहाँ सदैव किसी–न–किसी रूप में विकासमान रहा है, वहाँ वह अपने आकार–प्रकार में संवरते–बिगड़ते रहने में भी पीछे नहीं रहा है। स्मरणीय है कि परिवार को, अपने विकास की चरम अवस्था में, सारी वसुधा को घेर कर एक कुटुम्ब की भाँति जीवन–निर्वाह करने की मंजिल तक पहुंचना होता है।
परिवार की विविधता का प्रथम आधार जीवन–साथी के चुनाव की प्रक्रिया है। देश–काल परिवेष्टित परिस्थितियों के अनुसार मनुष्य ने अपने शताब्दियों के इतिहास में, इस प्रश्न पर अनेक प्रकार से विचार किया है। कभी उसने पौरूष को इसका आवश्यक गुण मान कर वीर प्रतियोगिताओं, रण–कौशलों अथवा स्वयंवरों में शौर्य

प्रदर्शन के द्वारा अपने अभीष्ट की सिद्धि की है। कभी वह वैभव और प्रदर्शन की भव्य प्रतिमा की चकाचौंध पर अपने चुनाव को आधारित करता है। उसने कभी अपने चुनाव के लिए तपोनिष्ठ साधक और अनन्य प्रेमासक्त जीव को उपयुक्त समझा है। प्रतिपक्षी की दृष्टि से सहज सौन्दर्य, सात्विक सरलता और मृदुल स्वभाव कभी आकर्षण को जन्म देता है तो कभी चंचला, वशीकरण में प्रवीण उद्धत चेष्टाएँ मन को खींचने में समर्थ होती हैं। पुरुष और स्त्री में इस प्रकार एक दूसरे के प्रति आकर्षण के लिये किसी विशेष परिस्थिति की ओर संकेत नहीं किया जा सकता। मानव प्रकृति जहाँ सहजता के छोर से आबद्ध है वहीं चरम श्रेणी की जटिलता का कोना भी उसे स्पर्श किये हुए है। अतएव वातावरण और संस्कार व्यक्ति को जहाँ जीवन–साथी का बोध कराते हैं, वहीं अपनी सापेक्ष अवस्था में उसके स्वरूप का निर्धारण भी करते हैं। इसलिये जीवन साथी के चुनाव की आवश्यकता तथा उसकी पद्धति परिवार को विविध रूपों में विभाजित कर देती है। इस दृष्टि से विभाजित परिवारों के लिये जन्म, कुल, गोत्र, व्यावहारिक कुशलता, परिधि के प्रति कर्तव्य भावना आदि की महत्ता भी कम नहीं होती।

यह विवरण परिवार के विविध रूपों के मूलभूत आधारों के विश्लेषण में हमें एक नवीन प्रश्न के लिये प्रेरित करता है, और वह यह कि परिवार के रूपों की विविधता के बीच की कड़ियों को कैसे जोड़ा जाय? यह सत्य है कि परिवार एक शाश्वत संस्था है किन्तु देश–काल–गत विभेदों के बीच के सफर को पूरा करने के लिये इसे किन–किन मोड़ों से होकर गुजरना पड़ा।

''प्रारम्भिक सभी रूपों में वंश माता के नाम से चलता था – यद्यपि यह प्रथा अब कुछ लोगों एवं सम्प्रदायों तक ही सीमित रह गई है लेकिन उस काल में यह सर्वव्यापी थी।[1] ऐसे परिवार में वंशक्रम के माता के आधार पर चलने के अतिरिक्त पति को पत्नी के घर जाना होता है। उससे उत्पन्न बच्चे भी अपनी माता के पास ही रहते हैं। पिता की मृत्यु पर स्त्री के भाई और बहन, बहनों के बच्चे व उसकी माता की सब बहनें सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती हैं। परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध का अभाव (पति–पत्नी के बीच) इसमें बना रहता है क्योंकि सम्मिलन में उतनी सुविधा और सहजता नहीं रह पाती।"[2]

परिवार मूलतः एक व्यवस्था है। इसका स्वरूप उसके प्रति दृष्टिकोण से ही अपने संश्लिष्ट रूप में प्रस्तुत होता है। वस्तुतः आस्तिक विचारधारा सृष्टि की उत्पत्ति ब्रह्माजी से मानती है। उनके औरस पुत्र अंगिरा, सनत्कुमार, नारद आदि कहे गये हैं। ऐसा पौराणिक उल्लेख है कि इन्होंने भगवद्भक्ति और ज्ञानार्जन के साथ योगनिष्ठा को भी महत्व दिया और ब्रह्माजी की सृष्टि–रचना से अलग रहने के लिये विनम्र प्रार्थना की और आत्मज रूप में ब्रह्माजी से अंगिरा से वृहस्पति तथा वृहस्पति से भारद्वाज हुए। इसलिए भारद्वाज से आगे परिवार का रूप चलता है और वे ही गौत्र रूप में प्रथम माने गये हैं। इसके पश्चात् मानवसृष्टि का प्रारम्भ हुआ।

यह भी यहाँ उल्लेखनीय है कि मानव–सृष्टि का उद्‌गम 'देवांशभूत' है। लोकमान्य त्रिदेवों में से केवल 'महादेवजी' के प्रारम्भिक परिवार का उल्लेख पुराण, साहित्य आदि में हुआ है। 'ब्रह्माजी' विश्व–विधायक होकर 'पितामह' अवश्य माने गये हैं किन्तु उनके परिवार का विशेष रूप प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार 'भगवान् विष्णु' का भी विशेष परिवार नहीं है। स्वयं 'महादेवजी' का भी परिवार 'गजानन' और 'षड़ानन' के उपरान्त अधिक विकसित नहीं होता। वस्तुतः यह 'देवांशभूत' होकर मानव–सृष्टि से पृथक है।

इसी के साथ यह कहना भी यहां अनुपयुक्त नहीं होगा कि स्त्री–पुरुष सम्पर्क–अन्य सृष्टि–क्रम का प्रारम्भ 'मनु' से स्वीकार किया गया है। यह 'मनु' एक ही नहीं है अपितु 71 चतुर्युगों के पश्चात् नये 'मनु' का आविर्भाव होता है। यह 'मनु' भी एक प्रकार से 'देवांशभूत' हैं। अतएव वर्तमान मानव–सृष्टि का प्रारम्भ वैवस्त (विवस्थान–सूर्य) मनु से माना गया है।

'संस्कार' से उन प्रभावों का बोध होता है, जो व्यक्ति पर अपने जन्म लेने से पूर्व उस पर प्रभाव डालते हैं। अतएव 'संस्कार' का अभिप्राय, सीधे अर्थों में, वंशानुक्रमण से प्राप्त प्रवृत्तियों, विचारों तथा व्यवहारों के स्वरूपों से है। इनसे नवजात शिशु के अपने परिवार के प्रति दृष्टिकोण बनाने में अभूतपूर्व सफलता मिलती है। सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक 'जुंग' की सामूहिक अचेतन की धारणा'[3] इसको अपने माता–पिता के साथ सम्बन्धित करते हुए उनकी सामाजिक स्थिति विशेष के परम्परागत आधारों से भी जोड़ देती है। बच्चे के व्यक्तित्व और उसके दृष्टिकोण के लिये उसके परम्परागत प्रभावों की महत्ता स्वीकार की गई है। समाजशास्त्रियों[4] और मनोवैज्ञानिकों[5] ने एक स्वर से, इसलिये, इस बात पर बल दिया है कि अपने अहं की शक्ति, नैतिक दृढ़ता, उच्चतर अहं का स्वरूप, सामाजिक बनने की प्रवृत्ति, पारस्परिक विश्वास तथा अपराध भावना के विकास के लिये गर्भ–स्थिति से लेकर जन्म होने के पूर्व तक के तत्वों का महत्व निःसंदेह कम नहीं है। तात्पर्य यह है कि बच्चा अपने जन्म के अनन्तर अपने परिवेश की ओर जिस 'दृष्टि' से व्यवहार करता है, उसमें उसके 'स्वयं–प्राप्त' प्रभावों अथवा संस्कारों से पारिवारिक जीवन के प्रति दृष्टिकोण के निर्माण में, उसे अत्यधिक सहायता मिलती है।

भारतीय परम्परा जिन षोड्श संस्कारों की अनिवार्यता पर बल देती है, उनमें गर्भ–धारण से लेकर अन्त्येष्टि तक की मानव की जीवन–पर्यन्त क्रीड़ास्थली का समाहार कर लिया गया है। इसलिये यदि उनमें से गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन तथा विष्णुबली संस्कार का सम्बन्ध जन्म से पूर्व की परिस्थितियों से हैं तो जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौल, मौन्जी (उपनयन), वेदव्रत–चतुष्टय, समावर्तन, विवाह, पंचमहायज्ञ, उत्सर्ग, उपाकर्म तथा अन्त्येष्टि को जीवित अवस्था की इति तक से सम्बद्ध किया गया है।[6] संक्षेप में भारतीयों ने 'संस्कारों' का अभिप्राय शुद्धि की धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति के दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिये किये जाने वाले अनुष्ठानों से समझा है, जिनकी पृष्ठभूमि में वह समाज का पूर्ण विकसित सदस्य हो सके।[7]

यहां दृष्टव्य यह है कि पारिवारिक दृष्टिकोण निर्धारित करने में उन पद्धतियों, प्रक्रियाओं तथा आधारभूत शिक्षण–प्रणालियों का कितना हाथ रहता है। इसी दृष्टि से यह स्वीकार किया जाता है कि 'प्रतिभा' और 'अर्जितज्ञान' से यदि व्यक्तित्व का निर्माण होता है तो यह व्यक्तित्व विविध जातियों के मूल में निहित शिक्षा के स्वरूप को ही अपना आधार बनाता है। अतएव मनुष्य की परिवार के सम्बन्ध में प्रयुक्त विचार–प्रणाली, प्रवृत्ति–संयोजन तथा व्यवहार–निरूपण में उसकी शिक्षा का महत्व अत्यधिक मात्रा में दिखाई देता है। मनोविज्ञान द्वारा 'असामान्य व्यक्तियों' के विस्तृत अध्ययन में भी इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है।

इस प्रसंग में जन्म से पूर्व के आनुवंशिक प्रभावों तथा उपार्जित शिक्षा की धारणाओं के अतिरिक्त परिवेशगत मांगों के महत्व को भी अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। परिवेश के प्रभावों के सम्बन्ध में यद्यपि समस्त मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्री एक मत नहीं है, किन्तु उसकी व्यक्तित्व–निर्माण के आवश्यक पूरक के रूप में सभी ने महत्ता प्रतिपादित की है। संक्षेप में परिवेश की मांगों का सम्बन्ध तीन क्षेत्रों से है।

सभी मनोवैज्ञानिकों ने 'घर के प्रभाव' को परिवेश के आधारभूत क्षेत्र के रूप में स्वीकार किया है। घर के परिवेश का प्रभाव माता–पिता तथा अन्य सदस्यों के पारस्परिक रहन–सहन तथा सुनिश्चित आदर्शों के रूप में पड़ता है। यदि परिवार में दादा–दादी,

चाचा–ताऊ आदि हों तो इनका भी बालक के व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। इसीलिये संयुक्त परिवार में पले बालक व छोटे परिवार में पले बालक के व्यक्तित्व में अन्तर आना स्वाभाविक है। यूं भी बालक के सांस्कृतिक विकास में उसकी माता–पिता की भावनाओं और अपने परिवार में उनके द्वारा बनाये गये वातावरण का पर्याप्त हाथ रहता है। माता–पिता से मिला स्नेह माता के द्वारा बच्चों को दूध पिलाने से लेकर अन्य क्रीड़ाओं के रूप में अभिव्यक्ति पाता है। बालक के विकास में, इसलिए, उसके घर की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और उद्देश्य परक धारणाओं का अमिट प्रभाव बना रहता है।[8]

'घर' से ही सम्बद्ध परिवेश का दूसरा प्रमुख क्षेत्र 'बालक के जन्म–क्रम' से जुड़ा हुआ है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक 'एडलर' के अनुसार परिवार में बालक के जन्म–क्रम का उसके व्यक्तित्व पर बड़ा प्रभाव पड़ता है।[9] जन्म–क्रम से बालक की पारिवारिक स्थिति निश्चित होती हैं, जिससे उसके कार्यों पर प्रभाव पड़ता है तथा कार्यों से उसके व्यक्तित्व का संयोजन होता है।

घरेलू–परिवेश का अन्तिम क्षेत्र 'घर का अन्य परिवारों के साथ सम्पर्क' की भावभूमि से सम्बन्धित हैं। स्मरणीय है कि बच्चा प्रारंभ से ही जैसे माता के सम्पर्क में और फिर धीरे–धीरे अन्य सदस्यों के साथ अपने को सम्बद्ध रखने का चेतन या अचेतन रूप से प्रयास करता है, वैसे ही कुछ बड़ा होने पर उसका अन्य परिवार के समवयस्कों, बड़ों तथा छोटों से मिलना प्रारंभ होता है। इस प्रकार बच्चे में 'सामाजिक बनने' की प्रवृत्ति का विकास होता रहता है। सामूहिक अचेतन से प्राप्त अनुभवों तथा सामाजिक जीवन में दृष्टिगत होने वाली नियमावली[10] से इस प्रवृत्ति का रूप बनता–बिगड़ता रहता है। इसलिए हम व्यक्तित्व के 'वस्तुपरक' तथा 'व्यक्तिपरक' रूपों में परस्पर सम्बन्ध तथा विरोध की प्रक्रिया पर पारिवारिक जीवन के प्रति दृष्टिकोण की रूपरेखा को समझ सकते हैं।

इस प्रकार परिवार की चेतना के निर्माण में हम घर की आन्तरिक मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय व्यवस्था, बालक के जन्म–क्रम का स्वरूप और अन्य परिवारों के साथ उसकी रुचि–अरुचि की महत्ता के सम्बन्ध में स्पष्ट हो जाते हैं।

'कोम्टे' के अनुसार केवल पारिवारिक जीवन में ही सामाजिक प्रवृत्तियों का उपयुक्त आधार प्राप्त होता है।[11] इस दृष्टि से भारतीय परम्परा द्वारा मान्य चर्तुलक्ष्यों–धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष[12] की धारणा का सम्बन्ध भी भारतीय परिवारों में आज तक व्याप्त आस्थाओं और आदर्शों की प्रतीति कराता है। परोपकार का अन्तिम स्वरूप 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के रूप में जहां स्वीकार किया गया हो, वहां का परिवार यदि भौतिक ऐषणाओं से अधिक आत्मतत्व की प्रतीति और लोक मंगल की साधना पर बल न दे तो वह उस समाज के लिये अस्वाभाविक होगा। इस दृष्टि से समाज के परिवर्तन की विस्तृत श्रृंखला में मनुष्य ने समय–समय पर जिन आस्थाओं से अपने को सम्बद्ध किया है तथा जिन आदर्शों की प्राप्ति के लिये शरीर को परिचालित करने का मार्ग बताया है–उनके प्रभाव से परिवार के सदस्यों की मानसिक स्थिति कैसे अछूती रह सकती है? मनोविज्ञान के सामाजिक पहलू पर बल देकर एडलर, जुंग, हण्ट, मेकोबी, सूलीवान आदि ने इस सम्बन्ध में जो विश्लेषण प्रस्तुत किये हैं, उनसे भी उसका स्पष्टीकरण हो जाता है कि बालक का दृष्टिकोण बहुत कुछ उसके प्राप्त प्रभावों से निर्धारित होता है और इनमें उसकी आस्थाओं तथा आदर्शों की महत्ता को तो बिल्कुल भी नहीं भुलाया जा सकता।

अतएव व्यक्ति का दृष्टिकोण यदि घर की आन्तरिक व्यवस्था से प्रभावित होता है तो उसके द्वारा उपार्जित अनुभवों से भी वह रूप ग्रहण करता है। इस प्रसंग में परिवेश की मांगें, घर की मूल अवस्था तथा अन्य परिवारों के प्रति उसकी रुचि भी उसे नवीनता प्रदान करती है। साथ ही विशेष जाति में व्याप्त आदर्श तो उसके दृष्टिकोण के लिए बना–बनाया ढांचा[13] ही तैयार रखते हैं, जिनको वह अपनी सापेक्ष परिस्थितियों के सन्दर्भ में स्वीकार करता है अथवा उनके रूपों में संशोधन करता रहता है।

इस प्रकार व्यक्ति का पारिवारिक जीवन–दर्शन बनाने में आनुवंशिकता परिवेशगत व्यवस्था तथा आदर्श की रूपरेखा विशेष महत्व रखती है।

कवि या कलाकार अपने कुल परिवार, गाँव घर और समाज से प्रेरित होकर तद्नुरूप अनुभूति ग्रहण करता है, साथ ही वह अपनी काव्य कला के माध्यम से समग्र भाव बोध को अभिव्यक्त करता है। जिस रचनाकार की सृजनात्मकता जितनी सशक्त और पूर्ण होती है उसका साहित्य भी उतना ही चमत्कृत और रसपूर्ण होता है।

पूर्वज एवं वंश परम्परा के परिप्रेक्ष्य में मैं यह कह सकती हूँ कि अमोल बटरोही एक सामवेदी वत्स गोत्रीय सरयू पारीय दोगारी ब्राह्मण थे। इनके पूर्वज एवं वंश परम्परा से परिवार प्रतिष्ठा, वंशगत आयातित अपने समाज में अपना उत्कृष्ट स्थान रखता आ रहा है। इनके स्वर्गीय बाबा भगवानदीन लब्ध प्रतिष्ठित और सम्मानित व्यक्ति थे, जिनका प्रभाव 'बटरोही' जी के पिता पं. शिवबालक राम पर पड़ा। शिवबालक राम अपने जीवनकाल से ही वंश परम्परा अनुसार सत्कर्मों में लगे रहते थे, और उन्होंने अपने उत्कृष्ठ कार्य व्यवहार से 'दुअरा' ग्राम का नाम इतना आगे बढ़ाया कि बाद में उनके गाँव की पहचान में ''पं. शिवबालक राम '' का नाम जुड़ गया। अब रीवा जिले के मनिगवाँ तहसील का गाँव 'दुअरा' कवि के पिता श्री शिवबालक राम के नाम से विख्यात हो गया।

व्यक्तित्व का अंतर्वाह्य विश्लेषण

किसी कवि के कृतित्व का अध्ययन उसके व्यक्तित्व के अनुसन्धान से सहज सुलभ हो जाता है। क्योंकि व्यक्तित्व निर्माण में सहायक घटनाएँ जैसे पूर्व संस्कार, बचपन के संस्कार, पारिवारिक–सामाजिक–सांस्कृतिक–साहित्यिक धार्मिक एवं राजनीतिक परिवेश इत्यादि का व्यक्ति की मनोरचना पर गहरा प्रभाव पड़ता है और अगर वह व्यक्ति रचनाकार हो तो उसके कृतित्व में किसी न किसी रूप में वे अभिव्यक्ति भी पाती हैं। कवि और कविता दो वस्तुएँ न होकर एक ही वस्तु के दो नाम हो जाते हैं। इस दृष्टि से कृतित्व के अध्ययन में रचनाकार के व्यक्तित्व के अध्ययन का भी बड़ा महत्व है।

व्यक्तित्व व्यक्ति के गुणों–अवगुणों, भावों–अभावों के साथ उसकी स्वतन्त्र सत्ता को सूचित करता है, जिसमें ''मूल्यों की खोज करती और उन्हें आत्मसात करती क्षमता होती है।''[14]

व्यक्तित्व एक व्यापक और विविधतापूर्ण लेकिन सूक्ष्म चीज है, जो मनुष्य के किसी एक ढंग अथवा लत से लेकर उसकी पूरी जीवन–पद्धति और साहित्य में भी प्रतिबिम्बित होता है।[15]

उस प्रतिबिम्ब में व्यक्ति की लत से लहजे तक, वृत्ति से प्रवृत्ति तक, भाव–अभावों से लेकर स्वभाव प्रभावों तक तथा व्यवहार से लेकर वाड्.मय तक व्यक्तित्व के विभिन्न सूत्र मिलते हैं। इन्हीं सूत्रों की इकाई का नाम है व्यक्तित्व।

व्यक्तित्व व्यक्ति की स्वतन्त्र सत्ता को सूचित करता हैं, जिसमें ''हर एक व्यक्ति अद्वितीय या बेजोड़ रहता है और व्यक्ति की वैयक्तिकता के अध्ययन का अर्थ उसके व्यक्तित्व का अध्ययन है।[16]

बटरोही जी के शब्दों में – विश्व के प्रत्येक समाज की कविता की जरूरत है। कविता, दुख के क्षणों में सच्चे मित्र की तरह पीठ पर हाथ रख सिर्फ सांत्वना नहीं देती, लड़ने का साहस भी देती है।

अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध तन कर खड़े होने के लिए आत्मा में आग पैदा करती है। कविता, जीवन और समाज को बदलने की क्षमता रखती है। सच्ची कविता से वाह नहीं आह निकलती है। वह सन्नाटा बुनती है। स्वाभिमान के साथ अपनी बात कहने की ताकत पैदा करती है।

इस प्रकार अमोल बटरोही एक तेजस्वी नक्षत्र की भांति विन्ध्य की धरा में उदित हुए, जिसे 'बघेली' साहित्य में सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा। अमोल बटरोही पूरी सिद्दत से बघेली कविता को सामाजिक सरोकारों से जोड़ा है। अमोल बटरोही के संवेदनशील हृदय, कलात्मक सोच और उर्वर मस्तिष्क ने बघेली भाषा को एक नई दृष्टि दी है। वे रचना में खड़ी बोली, अंग्रेजी और संस्कृत के बरास्ते बघेली में आए और बघेली के होकर रह गए। इसीलिये उनकी रचनाओं में गलदश्रु भावुकता और हल्की–फुल्की तुकबन्दी नहीं वरन् गम्भीर अध्ययन, चिन्तन और जीवन का यथार्थ है, जो खुलकर बोलता है, बेलाग और सटीक बोलता है और सभी देखने, सुनने, करने और कहने वालों से पूँछता है – 'अइसन जब–जब दिखेन त का कुछु बोलेन अपना।'

अमोल बटरोही के व्यक्तित्व का अन्तर्वाह्य विश्लेषण करते हुए डॉ. राम प्रसाद मिश्र का कथन है – 'बघेली–कविता को अधुनातन आयमों से संपन्न करने वाले कविवर डॉ. अमोल 'बटरोही' का 'हिमालय केरि कनियाँ' (1988 ई.) संग्रह इस विभाषा के साहित्येतिहास में एक सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त करने का अधिकार रखता है, क्योंकि इसकी कविताओं में विषयों की विविधता भी विद्यमान हैं। राष्ट्रवाद, दीन दलित–संवेदन, शोषण–प्रपीड़न–विगर्हण, प्रकृति चित्रण प्रभृति क्षेत्रों में कवि को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। छंद, गीत, हाइकू मुक्ता, कविता नई कविता की विविध शैलियाँ कवि की प्रतिभा के साथ विद्वता की सूचना भी देती है। कवि ने टकसाली बघेली का प्रयोग किया है।''

डॉ. अमोल बटरोही ने जिन रचनाकारों से प्रेरणा ली है, उन रचनाकारों की श्रेणी में डॉ. भगवती प्रसाद शुक्ल, प्रो. आदित्य प्रसाद सिंह, गोमती प्रसाद विकल आदि रहे हैं। बघेली साहित्य सर्जकों में राजीव लोचन शर्मा, सुदामा प्रसाद मिश्र, सुदामा 'शरद', सूर्यमणि शुक्ल, रामलखन शर्मा 'निर्मल', भागवत प्रसाद पाठक, रामाधार शुक्ल विद्रोही, कालिका प्रसाद त्रिपाठी, विजय सिंह परिहार, मैथिलीशरण शुक्ल 'मैथिली', बाबूलाल दाहिया, श्रीनिवास शुक्ल 'सरल', रामचन्द्र सोनी 'विरागी', हरिनारायण सिंह 'हरीश', अनूप सिंह 'अशेष', त्रिनेश चित्रासी, शिवशंकर मिश्र 'सरस', आर.जी. पाण्डे 'विकल', कैलाश तिवारी, राम प्रसाद तिवारी आदि का नाम उल्लेखनीय है।

बटरोही जी के शब्दों में हमारी कवितायें गरीबों की भूख का दस्तावेज हैं। उनके काव्य को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि की मानसिकता में यह बात लिपटी हुई है। उनके व्यक्तित्व की इतनी ही नहीं और भी विशेषताएँ मिलती है।

शिक्षक की गरिमा उनके जीवन में पग–पग में दिखाई पड़ती है। उनका सौम्य स्वभाव प्रत्येक मिलने वाले को अपनी ओर बिना आकर्षित किये नहीं रहता। सहजता ही उनकी महानता है वे बड़े ही खुले दिल के हसोड़ कवि है। बटरोही जी के व्यक्तित्व के समग्र रूप का मूल्यांकन एक ही साथ कई रूपों में देखने को मिलता है। मुझे उनसे प्रायः मिलने का अवसर मिलता रहा है और प्रत्येक मुलाकात में उन्होंने कोई न कोई ऐसी बात कही है जो कुछ विचित्र, अनोखी और अनुभूति की गहराई की प्रतीत हुई है। ये जिस माटी के सपूत हैं उसके अन्तस्तल की गहराई में पहुँचने का प्रयास करते हैं। उनके मन में जो टीस है जो वेदना है वह कृत्रिम न होकर उनकी मानसिकता का बोध होता है। वे ऐसे अखण्ड स्वभाव के व्यक्ति है कि कोई भी सही बात कहने को कभी रूकते नहीं हैं। मुक्त और ठोस अभिव्यक्ति ही उनके स्वभाव में है। स्वाध्याय तो उनका संस्कार सा प्रतीत होता है। इसीलिये वे अध्यापन करते हुये भी विभिन्न परीक्षाओं में स्वाध्यायी छात्र की हैसियत से बैठते रहे हैं और आशातीत सफलता अर्जित करते रहे। सबसे बड़ा उनके व्यक्तित्व का बड़प्पन उनका हमें इस दृष्टांत में मिलता है – रामकृष्ण मिश्र, व्याख्याता भौतिकी उनके अध्ययन के अध्यापक हैं। संयोग से उन्हें बटरोही जी के साथ रहना पड़ा। उस स्कूल में बटरोही जी प्राचार्य (प्रभारी) थे प्रतिदिन कुंये पर जाते और पंडित जी के लिये नहाने का पानी भरते थे। एक प्राचार्य एक शिक्षक के लिये पानी भरे उससे बड़ी बात क्या हो सकती है। आम आदमी की ऐसी भावना नहीं हो सकती।

निष्कर्ष

इस प्रकार मैं यह कह सकती हूँ कि अमोल बटरोही पर उनके पूर्वजों का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। अमोल बटरोही के साहित्य में देशप्रेम, जन–जन के प्रति प्रेम, गुरूजनों के प्रति आदर का भाव, दलित जनों के प्रति उपकार की वृत्ति, कर्मयोगी ग्रामीण भावबोध के पुरोधा उच्च शिक्षाविद् होने तक का समग्र प्रेरणाभूमि उनकी अनुवंशिकता ही कही जा सकती है।

शिक्षा सेवाएँ एवं जीवन व्यापार के सम्बन्ध में मैं यह कह सकती हूँ कि डॉ. अमोल प्रसाद मिश्र 'अमोल बटरोही' के नाम से लब्ध प्रतिष्ठ हो चुके हैं। एम.ए. संस्कृत में इन्हें गोल्ड मेडल अ.प्र.सिंह विश्वविद्यालय, रीवा से प्राप्त है। संस्कृति में कृष्ण प्रसाद शर्मा ''घिमरे' व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर इन्हें डॉ. ऑफ फिलासिफी की उपाधि प्राप्त है।

डॉ. अमोल एक कर्मनिष्ठ रचनाकार है। वे अद्यावधि निरंतर अपनी सृजन वत्ता के प्रति उदार मन से कुछ न कुछ लिख रहे हैं। बटरोही जी बघेली साहित्य के सशक्त रचनाकार है।

निष्कर्ष रूप में बटरोही जी के व्यक्तित्व के संबंध में इतना ही कह सकते हैं कि वे प्रतिभा के धनी स्वभाव के अखण्ड और भूखे नंगों के प्रतिनिधि कवि हैं। निर्भीकता उनके स्वभाव की ऊँचाई है, संवेदना, श्रृंगार की मिलन शीलता उनका गुण है। उनका व्यक्तित्व अगर उन्हीं के आइने में देखा जाय तो स्वयं दर्पण के समान दिखाई पड़ता है। वे गाँव की महकती माँटी के पहरेदार है। उनके व्यक्तित्व की सारी विशेषतायें उनके काव्य में सर्वत्र परिलक्षित होती है। अभावों का लेखा जोखा और भूख दर्द ही उनका काव्य विषय रहा है।

निःसंदेह यह कहना समीचीन होगा कि डॉ. अमोल बटरोही के व्यक्तित्व का संकल्प आमजन की आवाज है। 'हम बोलब' में कवि ने गाँव के खेत खलिहान से संसद तक सवाल उठाए हैं। परम सत्ताओं के (ईश्वरीय) पार्थिव रूपों को कठिन स्थलों से जमीन पर आने की, उनको सुनने की बात कही है। सामान्यों और असहायों के लिए अलंघ्य पर्वत श्रृंखला के क्रोड़ में स्थापित मठों और गढ़ों को सम्बोधित 'सारदा मइया' से कहते हैं –'मइया पहार के कोदड़ाउरि ते/निकरि कइ समथर भठवा मां रहांरुसबका निहारां/सब कइ गोहारि सुनां। यह आमजन की आवाज है। आज कोई इस डर से नहीं बोल रहा है कि वह सच बोलेगा तो साथ छूट जायेगा। नहीं बोलता तो फिर बुद्धिजीवी होने का क्या अर्थ? यह दुरभि संधि ही अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार को बढ़ावा ही दी है। इस चिंता से जब तक समाज मुक्ति नहीं पायेगा, बोलेगा नहीं तो कर्ता, अकरणीय को भी करणीय मानता रहेगा।

काव्य सृजन के संदर्भ में कवि ने अपने व्यक्तित्व के अन्तर्बाह्य विश्लेषण को निवेदित करते हुए लिखा है – बघेली काव्य हरिदास

तथा बैजू की तुकबन्दी से आगे कदम बढ़ाता हुआ आज प्रतीक–बिम्ब–व्यंजना–विधान से पुष्ट होकर समर्थ भाषाओं की काव्य–पंक्ति में आ खड़ा हुआ है। मेरी अधिसंख्य कविताओं में से डॉ. 'चन्द्र' ने ऐसी ही कविताएँ चुनकर इस संकलन में सम्मिलित की है, जो बघेली के अधुनातन काव्य–विकास को रेखांकित कर सकें। पाठकों को यह संकलन समर्पित करते हुए निवेदन है कि जहाँ आवश्यकता हो वे बोले अवश्य, क्योंकि जब वे बोलेगें तो कार्य भी ऐसे करेगें कि कोई उन्हें बोल न पाये। इस प्रकार से गलत का प्रतिरोध एवं सही कार्य करने की परम्परा चल पड़ेगी। विश्वास है कि 'हम बोलब' आँख–कान–मन को प्रिय लगने के साथ ही 'कान्तासम्मितयोपदेशसुजे' भी होगा।

डॉ. सेवाराम त्रिपाठी का यह कथन सम्मान और पुरस्कार की दृष्टि से प्रासंगिक लगता है कि अमोल बटरोही की कविता बघेली जनपद के भीतरी और बाहरी हाहाकार को चित्रित करती है। किसान जीवन की विकट समस्यायें उनकी कविता के केन्द्र में है। किसानों, मजदूरों की त्रासदी, उनके आंतरिक और बाह्य संघर्ष, पाखण्ड और अन्तर्विरोधों का अंकन उनकी कविता में बखूबी होता है। बटरोही की कविता के चौखटे में प्रकृति, पर्यावरण सामाजिक विडम्बनाओं के चित्र बार–बार जीवंत और मूर्त होते हैं। अमोल जिन्दगी को कई कोणों और कई आयामों से रूपायित करते हैं और अपनी कविता के मार्फत बहुत चुभती हुई बातें कहते हैं। इनकी कई कवितायें एक अलग तरह का रवैया अख्तियार करती है। जिनमें गहरी बिम्बात्मकता और भाषा सामर्थ्य है। 'आँखी तोहाँरि', कोइया मुर्रत पड़े रहे' जैसी कवितायें बार–बार हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। जिनमें बघेली ताकत और व्यंजकता उजागर होती है। बघेली बोली की विविधता को अपनी काव्य–संवेदना के द्वारा वे निरन्तर उर्जावान बनाने में सक्षम होंगे; ऐसा विश्वास किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ

1. नारी–विवाह और सदाचार, पृष्ठ 24, आनन्द प्रकाश जैन.
2. समाजशास्त्र, सत्यकेतु विद्यालंकार, पृष्ठ 352–353.
3. Theories of Personality, Calvin, S. Hall, Gardner, Lindzey, p. 81.
4. Society, Maciver and Page, p. 240.
5. The Psy. of Character Development, Robert F. Peck, p. 104.
6. धर्मशास्त्र का इतिहास (प्रथम), पी.वी. काणे, पृष्ठ 178–179.
7. हिन्दू संस्कार, पृष्ठ 19, डॉ. राजबली पांडेय.
8. किशोर मनोविज्ञान की भूमिका, पृष्ठ 147, डॉ. सूर्य प्रसाद चौबे.
9. Individual Psychology, Adler, pp. 395-405.
10. Quoted by Hindu Social Organizations, P.H. Prabhu, p. 209.
11. Quoted by Hindu Social Organizations, P.H. Prabhu, p. 209.
12. हिन्दू संस्कृति विशेषांक, कल्याण, पृष्ठ 513.
13. Theories of Personality, Hall, Lindsey, p. 89.
14. हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, पृष्ठ 806, संपादक मण्डल – डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, धर्मवीर भारती आदि.
15. स्वातंत्र्यवीर सावरकर, एक रहस्य, पृष्ठ 28, द.न. गोखले.
16. वैज्ञानिक उपन्यास और उपन्यासकार, पृष्ठ 15, डॉ. ज.वा. चौधरी.